हरियाणवी जैन कथायें

—सुभद्र मुनि—

श्रुत/ज्ञान-सेवा

श्रीमान् ला. मनोहरलाल ईश्वर प्रकाश जैन
एम. डी. - 14, पीतमपुरा
दिल्ली-110034

पुस्तक : हरियाणवी जैन कथायें
(हरियाणवी भाषा में प्रथम बार प्रस्तुत जैनकथायें)
लेखक : जैन धर्म प्रभावक
श्री सुभद्र मुनि जी महाराज
सम्पादन : डा० विनय 'विश्वास' (दिल्ली)
चित्रांकन : अनुज के० भटनागर
अवतरण : माघ शुक्ल-6, (संयम-दिवस)
24.जनवरी 1996
प्रकाशन : मुनि मायाराम सम्बोधि प्रकाशन
के.डी. ब्लाक, पीतम पुरा, दिल्ली-110034
मूल्य : चालीस रुपये
मुद्रक : वर्धमान कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिंटर्स (7415287)

समर्पण

- तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर को !
  जिनके धर्म-संघ का मैं एक अदना-सा सेवक हूँ !

- देवों और मनुष्यों द्वारा अर्चित गुरुदेव श्री मायाराम जी महाराज को !
  जिन्होंने हरियाणा प्रदेश में जिन-धर्म को गांव-गांव में पहुँचाया था।

- मेरी श्रद्धा के आधार, जिनकी अनन्त कृपा से मैंने धर्म-संयम-सन्यास-विद्या एवं जीवन-पथ को पाया, उन गुरुमह परम श्रद्धेय गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज को !

- जन-जन के आराध्य, जैन-शासन के सूर्य, धर्म संघ-शास्ता, मेरे परम आराध्य गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज को! जिनके वरद्हस्त की सुमंगल छाया में, मैं साधना-पथ पर चल रहा हूँ !

अनन्त आस्था के साथ सादर समर्पित !

– सुभद्र मुनि

अनुक्रम

क्रम	कथा	पृष्ठ
	स्वकथ्य	(i)
	भूमिका	(ix)
1.	परभू के दरसन	1
2.	आनंद का खुज्जाना	7
3.	दयालु राज्ञा	14
4.	अनाथ कूण सै	19
5.	छिमा की मूरत	23
6.	रोहिणिया चोर	29
7.	सुथराई का घमण्ड	37
8.	साद्धू का सतसंग	43
9.	भगवान् का ध्यान	49
10.	एक दन मैं मुकती	53
11.	मामन सेट के बलद	59
12.	करणी अर भरणी	64
13.	मेघ कुवार मुनी	69
14.	दया के समुन्दर	76
15.	सुभ भौना	80
16.	जो मौत पै भी ना डिग्या	85
17.	मन्तर का चिमत्कार	89
18.	भगवान महावीर अर चण्डकोसिया सांप	93
19.	साचा भगत कामदेव सरावग	100
20.	जो करै सै ओए भरै सै	105
21.	अक्कल आपणी-आपणी	109
22.	साच्चे गरु योगिराज सिरी रामजीलाल जी म्हाराज	113
	परिशिष्ट	121

स्वकथ्य

कथा-कहानी मानव-जीवन की प्रतिच्छवि अथवा प्रतिबिम्ब है। यह प्रतिबिम्ब यदि जीवन के प्रणेता-सूत्रधार अरिहन्त भगवन्तों द्वारा बिम्बित/चित्रित हो तो उसे देख-समझ कर मानव अपना जीवन सफल-सार्थक कर सकता है। इसमें किंचित् भी संदेह नहीं हैं। तीर्थंकरों/महापुरुषों द्वारा कथित कथाएँ हमें न केवल जीवन रस ही देती है, अपितु जीवन में सुधारस घोल देती हैं। ये कथायें जीवन-संदेश तथा जीने की कला का महान् बोध भी देती हैं।

जीवन-दर्शन को जितनी सरलता से कथा-कहानियों के माध्यम से आत्मसात् किया जा सकता है, उतनी सरलता से उपदेशों या अन्य विद्याओं के माध्यम से नहीं। यही कारण है कि भगवान महावीर ने अपनी धर्म-देशना में कथा-कहानी और दृष्टान्तों को अपने संदेश/उपदेश का सफल माध्यम या साधन बनाया। इससे यही सिद्ध होता है कि कहानी की शक्ति-क्षमता असंदिग्ध है। विषाद से भरे रीते-सूने दिनों में भी कहानी का पाथेय बड़ी राहत देता है। वनवास के सूने जीवन में मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम, लक्ष्मण और सीता को कथा-कहानियां सुनाकर धर्मपथ पर दृढ़ रहने का संबल देते थे :

कहहिं पुरातन कथा कहानी।
सुनहिं लखन सिय अति सुखु मानी।।

यह सब होने पर भी कहानी की सहज ग्राह्यता, स्व में रचा-पचा लेने की सहजता, अपनी-स्वकीय भाषा-बोली में अधिक संभव है। यह भी कह सकते हैं कि कथा यदि स्वर्ण है तो स्वभाषा या बोली उस स्वर्ण में बसी सुगन्ध है। भगवान महावीर द्वारा कथित कहानियों के प्रसार-प्रचार का मुख्य कारण यह भी था कि उनका प्रस्तुतीकरण उस युग की जन-भाषा 'प्राकृत' में हुआ था।

जैन कथा-साहित्य का प्रणयन राष्ट्र-भाषा हिन्दी में प्रचुर परिमाण में हुआ तथा हो रहा हैं। इससे जैन कथा-साहित्य प्रभूत लोक प्रिय बना है, फिर भी स्व अंचल की भाषा में कथित कहानी की अपनी विशिष्टता अैर भीतर की पहचान होती है। इसीलिए गुजराती, कन्नड़, राजस्थानी आदि भाषाओं के जैन लेखकों/संतों ने अपनी भाषा-बोली में जैन-कथा-साहित्य का

सृजन किया। यह सब सोच कर मैंने भी अपनी मातृभाषा 'हरियाणवी' में जैन कथाओं की रचना हरियाणवी भाषा भाषी पाठकों के लिए की हैं। यह भाषा भारत के जिस क्षेत्र/प्रदेश में बोली जाती है, उस प्रदेश के गौरव और वहाँ की संस्कृति में भीगे लोगों के बारे में कुछ न कहना अनुचित होगा। अतः कुछ शब्द हरियाणा क्षेत्र उसकी गरिमा के सम्बन्ध में कहना चाहूँगा।

हरियाणा एक ऐसा प्रान्त है, जहाँ हरि–श्रीकृष्ण ने पार्थ को गीता का उपदेश दिया था। वेदव्यास ने इस भूभाग को 'धर्मक्षेत्र' कहा है। इस प्रदेश की एक महती विशेषता यह है जो उल्लेखनीय है कि यहाँ वैदिक-जैन और बौद्ध भारत की तीनों संस्कृतियों का स्मरणीय संगम हुआ है। वैदिक धर्म के गीतोद्भव के साथ यहाँ बौद्धों के विहारमठ भी बनें। पुरातत्त्व विदों के अनुसार वर्तमान का अबोहर नगर पूर्व में बौद्धगृही नगरी के नाम से जाना जाता था। यहाँ के उत्खनन-खुदाई में बुद्ध और महावीर की बहुमूल्य प्रतिमाएं मिली हैं। बौद्ध धर्म के सामान्तर जैन धर्म भी हरियाणा में प्रभूत फला-फूला है। कहा जाता है कि भगवान के पावन चरण भी यहाँ की धरती पर पड़े थे। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि हरियाणा प्रदेश का प्रसिद्ध नगर हिसार ही जैन नगर इषुकार था।

हरियाणा कृषि एवं ऋषि की परम्परा से धनी और संपन्न प्रदेश है। यहाँ के लोग भोले, सरल, निष्कपट, निश्छल और विशुद्ध शाकाहारी हैं। दूध-दही की यहाँ की प्रचुरता इस लोकोक्ति से स्पष्ट हो जाती है :

देसां में देस हरियाणा।
जहाँ दूध-दही का खाणा।।

यहाँ के लोग स्वस्थ, बलवान, हृष्ट-पुष्ट और सादा जीवन जीने वाले होते हैं। स्त्री-पुरुष की बराबरी अथवा कंधे-से-कंधा-मिलाकर चलने की गति हरियाणा में देखी जा सकती है। पुरुषों की तरह स्त्रियाँ भी परिश्रमी और पुरुषों के साथ खेती में काम करती हैं।

ऐसी कृष्ण-बुद्ध और महावीरमयी पुण्य धरा पर मेरा जन्म हुआ। यद्यपि संत-श्रमण का अपना कोई प्रान्त नहीं होता। सन्त सबका होता है और सब उसके अपने होते हैं। फिर भी परिचय की प्रासंगिकता के कारण यह बताना पड़ा है कि मेरी मातृभाषा-स्वकीय-अपनी बोली हरियाणवी है। परिचय के प्रसंग में यह भी उल्लेखनीय है कि हरियाणवी हिन्दी की ही उपभाषा है। वैसे भी हरियाणा हिन्दी भाषी क्षेत्र है। भाषा-शास्त्रियों ने हिन्दी का ही एक प्रकार हरियाणवी हिन्दी को कहा है। इस भाषा में प्यार का इतना खुलापन है कि 'आप' और 'तुम' जैसे शब्द दूरी के आवरण में ढके आडम्बरी माने जाते हैं। अतः यहाँ छोटे-बड़े-पूज्य सब के साथ तू-तेरा

ही सहजता/निश्छलता के साथ बोला और सुना जाता है। कितनी सरलता है, यहाँ के जीवन में ! परम आत्मीयता, खुलेपन और सहजता की यह हरियाणवी भाषा-संस्कृति है।नगरों में यह आडम्बरी सभ्यता बन जाती है और तब भाषा आडम्बर का आवरण ओढ कर तू से 'तुम' और तुम से 'आप' आत्मीयता के सहज स्वरूप को चारों ओर से ढक लेती है। 'आप' की नकली बनावटी चमकीली चादर से ढके लोग 'तू' को असभ्यता और गँवारपन कहकर हृदय की धवलता/निर्मलता का मखौल उड़ाते हैं। मखौल उड़ाते समय ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि भक्त जब विह्वल होकर अपने आराध्य भगवान को 'तू' कहकर पुकारता है, तब क्या वह सचमुच गँवार या असभ्य बन जाता है या भगवान के साथ सहज आत्मीयता से जुड़ा होता है ? भक्त कहता है-"भगवान तू कहाँ है? तू मेरी पुकार क्यों नहीं सुनता? मेरी बारी में तू कहा चला गया? मेरे लिए तू कहाँ सो गया है? यद्यपि प्रभु इन सब भावों से (आना-जाना) मुक्त है परन्तु भक्त की ये पुकार है। तुलसी ने तो अपने राम से स्पष्ट कहा है :

तोहि मोहि नाते अनेक, मानिए जो भावै।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुंज हारी ।
तू दानि हौं भिखारी।।

अर्थात् भगवन् ! तेरे-मेरे अनेक सम्बन्ध हैं। उनमें तुझे जो अच्छा लगे, उसे ही मान। जैसे मैं तो प्रसिद्ध पापी हूँ ओर तू पाप पुंजों को नष्ट करने वाला (हरि) हैं। तू अगर दाता-दानी है तो मैं तेरे द्वार पर खड़ा भिक्षुक-याचक हूँ।

'आप' के इस आडम्बर की आज तो स्थिति यह हो चली है कि माता-पिता भूल से अपने बच्चे को 'तू-या तुम' का वात्सल्य भरा, अपने बड़े होने का प्यार नहीं दे पाते। बच्चा माता-पिता के लाड़-दुलार का भूखा रहता है। जो लाड़ पिता या माता के 'तू' में ही मिल सकता है, वही लाड़-दुलार 'आप' में कैसे सम्भव है? कृष्ण और यशोदा की बातचीत में 'तू तेरे' के सम्बोधन में माँ की ममता और पुत्र की आत्मीयता निम्न पंक्तियों में देखते ही बनती है। कृष्ण माता यशोदासे कहते हैं- माँ तू तो बहुत भोली है, जो इन ग्वाल-बालों के बहकायें में आकर इनका विश्वास कर लेती हैं, यथा-

तू जननी मन की अति भोरी,
इनके कहे पतियायो !

इसी तरह यशोदा कृष्ण से कहती हैं:

सूर-स्याम मोहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत ।

अर्थात्, लाला, मैं गोधन की सौगंध खाकर कहती हूँ मैं ही तेरी माता हूँ ओर तू मेरा बेटा है। लेकिन आज की स्थिति यह है कि माता के मुँह से भूल से भी शिशु के लिए 'तू' निकल गया तो मानो बड़ा भारी अपराध हो गया। बच्चे को पालने में लिटाकर उसके हाथ में खिलौना देकर आज की माता उससे कहती है-"आप इस खिलौने से खेलिए, रोना नहीं, मैं अभी आ रही हूँ" फिर लौटकर कहती है- "अरे-अरे ! आप तो रोने लगे हो? आप जल्दी बड़े हो जाइए। तब आप बाहर जाकर खेला करेंगे, रोना छोड़ देंगे।"

इसी संदर्भ में एक विनोद है। जन्म लेने के बाद पिता अपने नवजात शिशु से कहता है- आपने जन्म ले लिया, आप पैदा हो गए? यहाँ लगता है जैसा शिशु नहीं 'आप' का जन्म हुआ है,

कौन जानता है कि इस आडम्बर की सीमा कहाँ रुकेंगी? सम्मान सूचक 'आप' सम्बोधन का मैं किंचित् भी विरोधी नहीं हूँ। मेरा अभिप्राय यही है कि 'तू' और 'आप' का स्थान मत बदलिए।

जिस तरह 'आप' वालों के लिए 'तू' अनुचित है, उसी तरह से जहाँ 'तू' के प्यार दुलार, लाड़ और वात्सल्य की जरूरत है, वहाँ 'आप का सम्मान उसी तरह बेमेल लगेगा, जैसे खीर में नमक की मिलावट कर दी गई हो। मेरा अभिप्राय मात्र इतना ही है कि जो सज्जन हरियाणवी के सहज-सरल खुलेपन, आत्मीयता और प्रेम से परिपूर्ण 'तू' का मखौल उड़ाकर जन्म लेते हुए शिशु को भी आप कहकर यह संस्कार डालना चाहते हैं कि हृदय की सहजता को ढका ही रहना चाहिए। यह तो विडम्बना ही कही जाएगी।

जैसा कि मैंने पूर्व में कहा, मातृभाषा हरियाणवी होने के कारण मैंने प्रस्तुत कहानियों का सृजन उस भाषा में किया है। भाषा और जाति के प्रति भगवान महावीर की उदार दृष्टि भी मेरी प्रेरणा रही है। राष्ट्रभाषा हिन्दी में विविध विषयों पर मेरी तीस पुस्तकें पाठकों के हाथों में पहुँच चुकी हैं, पर हरियाणवी भाषा में रचित और प्रकाशित यह मेरी प्रथम कृति है। इसके साथ मैंने 'उत्तराध्ययन-सूत्र' को भी हरियाणवी भाषा में प्रस्तुत किया है।

अब कुछ जानकारी प्रस्तुत कृति के विषय में भी। इस पुस्तक में संकलित/संयोजित कहानियाँ जैन कथा-साहित्य के विपुल भण्डार से चुनी गई है। इनमें सहज सरलता/रोचकता के साथ-साथ जीवन-संदेश, जीवन-रस और मानव को वस्तुतः मानव बनाने की प्रेरणा छिपी है। सभी कहानियों में जीवन के विविध पहलुओं को छुआ गया है। इन कथाओं में कुछ

भगवान महावीर की स्वमुखी कथाएं हैं, कुछ जैनाचार्यों द्वारा कथित कथायें हैं। यह विश्वास भी आपको देना चाहूँ कि इनकी उपादेयता/उपयोगिता असंदिग्ध है।

कथाओं की हरियाणवी प्रस्तुति कैसी है, इसका निर्णय तो हरियाणवी भाषा के विद्वान् ही करेंगे। मेरा उद्देश्य तो इतना ही था की हरियाणवी क्षेत्र का आम आदमी भी अपनेपन की अनुभूति के साथ इसे पढ़े और लाभ उठायें। फिर भी पुस्तक की भाषा के हरियाणवी स्वरूप पर कुछ कहना प्रासंगिक होगा। हरियाणवी के भाषाविद् और रचनाकारों को भाषा सम्बन्धी सुझाव देने और भाषागत दोषों को इंगित करने में कदाचित कुछ सुविधा हो, इसी विचार से पुस्तक की भाषा के सम्बन्ध में कुछ कह रहा हूँ।

ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी की ही तरह ही हरियाणवी भी बोली और भाषा (डायलेक्ट एण्ड लैग्वेज) दोनों है। जैसा कि पूर्व में कहा है, यह हिन्दी की उपभाषा है, पूर्णतः हिन्दी से अलग भाषा नहीं है। कोई भी भाषा चार अंगों के अलगाव से अलग और भिन्न होती है। वे चार अंग हैं- सर्वनाम, अव्यय, क्रिया और विभक्तियाँ। जिस भाषा की ये चारों चीजें भिन्न नहीं होंगी, उसकी लिपि बदलने पर भी भाषा भिन्न नहीं होती। यही कारण है कि भिन्न लिपि होने पर भी विद्वान् लोग उर्दू को हिन्दी ही मानते हैं।, क्योंकि इसके सर्वनाम, अव्यय, क्रिया और विभक्तियाँ वहीं हैं, जो हिन्दी की हैं। जैसे, मैं जाता हूँ, वाक्य का उर्दू में अनुवाद नहीं हो सकता, लेकिन अंग्रेजी और संस्कृत में इसके अनुवाद क्रमशः 'आई गो' और 'अहं गच्छामि' हो जाएंगे। अतः अंग्रेजी और संस्कृत का भाषा-अस्तित्व हिन्दी से अलग है, उर्दू का नहीं। यह बात अलग है कि जिस हिन्दी को हम उर्दू कहते हैं, उसमें कुछ भिन्नता इसलिए भासती है कि उसमें अरबी-फारसी के परकीय शब्दों की बहुलता/अधिकता है।

भाषा के इसी अलगाव की दृष्टि से हरियाणवी पर भी विचार करें। हिन्दी का उत्तम पुरुष सर्वनाम 'मैं' है। ब्रजभाषा में यह सर्वनाम यद्यपि 'हू' या 'हौं' है, पर 'मैं' का भी प्रयोग होता है, जैसे-'हूँ तोइ बताऊँ' और 'मैं तोइ बताऊँ'- दोनों प्रयोग हैं। लेकिन विभक्तियाँ बदली हैं- तुझे या तुझको की जगह तोइ का प्रयोग हुआ है। यहाँ यह भी दृष्टव्य है कि 'तोइ' बोली गत प्रयोग है, साहित्यिक लेखन रचना में भाषागत प्रयोग 'तोहि' होगा, जैसा कि विनयपत्रिका में तुलसी ने किया-है- मोहि तोहि नाते अनेक मानिए जो भावै। इसी तरह सूर ने 'हौं-मैं' दोनों सर्वनामों का प्रयोग किया है, यथा-

प्रभु हौं सब पतितन को टीको।
और पतित सब धौस धारि के हौं जन्मान्तर ही को।।

तथा- अब मैं नाच्यो बहुत गोपाल,
महामोह को पहरि चोलना कंठ विषय की माल।

-सूर

तुलसी ने भी "हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंज हारी" प्रयोग लिखा है।

हिन्दी के 'जाता है' को हरियाणवी में 'जावै सै' कहेंगे। यहाँ 'है' क्रिया का परिवर्तन 'सै' में हुआ है, पर जाता का जावै में रूपान्तरण भर हुआ है। दोनों भाषाओं की क्रियाओं में अलगाव और समानता दोनों ही हैं। विभक्ति परिवर्तन पर विचार करें तो भिन्नता है। वह यह कि 'घर को' हरियाणवी में 'घरां' कहा जाएगा इसी तरह अव्यय शब्दों में भी भेद है- अंग्रेजी के 'हीयर' संस्कृत के 'यत्र' और हिन्दी के 'यहाँ' अव्यय की तरह हरियाणवी का अव्यय 'आड़े' है। निष्कर्ष यह कि हिन्दी के निकट और उसकी उपभाषा होते हुए भी हरियाणवी का अपना भाषा-अस्तित्व भी है।

हरियाणवी का क्षेत्र यद्यपि सीमित है, फिर भी यहाँ थोड़े-थोड़े अन्तर से उच्चारण और शब्दगत रूपों में भिन्नता है जो उच्चारण रोहतक के आस-पास है, वहीं शब्द जींद और हिसार के आस-पास नहीं बोले जाते। मेरे सामने भी समस्या थी कि किस एक रूप को अपनाने से भाषा का मानक और टकसाली स्वरूप स्थिर होगा। कहीं सेठ बोला जाता है तो कहीं 'सेट'। इसी तरह टेम, टैम, सुब, सुभ, शुभ और बी, भी के शब्द भेद तथा उच्चारण भेद ने भी मुझे दुविधा में डाल दिया। इसी संदर्भ में भाषाविज्ञान के मुख-सुख और प्रयत्न-लाघव (शौर्टकट) सिद्धान्तों ने इस समस्या का हल करने में मुझे बहुत मदद दी।

भाषा-विज्ञान का प्रभाव कभी बोली पर पड़ता है तो लिखित भाषा पर नहीं पड़ता और कभी दोनों पर पड़ता है। इन दोनों का प्रभाव हिन्दी पर ही देखें। दीनदयालु को दीनदयाल ही लिखा और बोला जाता है- दीनदयाल विरद संभारी। इसी तरह चंद्रवंशीय, रघुवंशीय और यदुवंशीय को क्रमशः चन्द्रवंशी, रघुवंशी और यदुवंशी बोलने-लिखने की परिपाटी बन गई है या एक मानक स्थापित हो गया है।

मुखसुख और प्रयत्नलाघव का ऐसा ही प्रभाव बोली पर तो हुआ है, पर लिखित भाषा में उसको स्थापित नहीं किया गया। कुछ उदाहरण इस संदर्भ में भी। नथ और रथ में 'थ' ही बोला और लिखा जाता है, क्योंकि स्पष्ट श्रुत है। लेकिन कहीं-कहीं देखने में आता है, हाथी का 'थ' बोलने में लुप्त हो जाता है। छोटे-बड़े चिल्लाते हैं-हाती आया, हाती आया।

पर लिखने में हाथी ही स्थापित है। इसी तरह चलते-चलते और गलती को चल्ते-चल्ते और गल्ती बोलते हैं। हरियाणवी बोली अधिक जाती है, उसका गद्य साहित्य बहुत कम है। इसीलिए मैंने कुछ शब्दों के बोली गत उच्चारणों को हटा कर उनका भाषायी रूप स्थिर करने का प्रयास किया है। यही प्रक्रिया मैंने उन शब्दों में भी अपनाई है, जिनके दो रूप प्रचलित हैं।

ब्रज भाषा के बोलने वाले 'तोइ' बोलते हैं, पर लिखित साहित्यिक भाषा में 'तोहि' लिखा जाता है, इसी तरह बोला हात जाता है, पर लिखा हाथ जाता है। यह सब ऊपर बताया जा चुका है। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर मैंने आंख्य को आंख, द्यन को दन, शांति, स्यांति को सांति, टेम को टैम और बी को भी, च्यार को चार, उन्नै को उसनै के रूप में अपनाया है। स्यांति में मैंने सांति को ही लिया है। ब्रजी, अवद्यी में भी श का बहिष्कार हैं उसके स्थान पर 'स' का प्रयोग है। हरियाणवी में भी श का प्रयोग मैंने मानक न समझकर शुभ को सुभ ही लिखा है। दो रूपों में मैंने जो एक रूप अपनाया है, उसका कारण यह भी है कि एक तो दूसरे प्रदेशों के लोगों को हरियाणवी समझने में अधिक सुविधा होगी और जो लिख-पढ़कर हरियाणवी के निकट आना चाहते हैं, उनको यह एक रूपता समझने में सुगमता देगी। टेम-टैम में देखें तो शुद्धत्व की दृष्टि से भी टैम को वरीयता दी जाएगी, क्योंकि मूल शब्द टाइम से टैम बनेगा, टेम नहीं: आइ=ऐ। ब्रजी में भी टैम ही बोला जाता है- का टैम है गयौ? इसी तरह मैंने कूक्कर, क्यूकर में क्यूकर रूप को ही अपनाया है, क्योंकि यह उच्चारण और भाषा दोनों की शुद्धता का द्योतक है।

इस तरह दो तरह से उच्चारित शब्दों की समस्या को हल किया गया।

जैसा कि मैंने पहले भी कहा है, हरियाणवी मेरी मातृभाषा अवश्य है, पर हरियाणवी के लेखक के रूप में मेरा यह पहला प्रयास है। यह प्रयास सफलता के कितने निकट है और इसे कितनी दूरी तय करनी है, इसका निर्धारण तो भाषाविद् और भाषाशास्त्री ही करेंगे। यह स्वाभाविक है कि मुझे उनके/आपके निर्णय/निर्धारण की प्रतीक्षा रहेगी। इसके साथ ही एक बात और कह दूँ कि मेरे दादा गुरु पूज्य श्री मुनि मायारामजी महाराज ने हरियाणवी भाषा में जैन गीत रचे थे।

मेरा यह सोचना अन्यथा न होगा– श्रद्धेय गुरुवर्य ने हरियाणवी भाषा में जैन-साहित्य रचने का सर्वप्रथम जो उपक्रम किया था, जिन बीजों का वपन जो उन्होंने किया था यह प्रयास उन बीजों का ही पल्लवन है।

भाषा के प्रसंग को लेकर कुछ अधिक कह गया। पुस्तक के विषय में अब और अधिक न कहकर उनके बारे में बताना आवश्यक है, जिनकी कृपा, आशीष और सहयोग से यह पुस्तक लिखकर आप तक पहुँचा सका।

अपने विषय में इतना कहना आवश्यक समझता हूँ कि मैं तो मात्र कठपुतली हूँ। इस कृति के साथ अन्य सभी कृतियों के लिखने वाले सूत्रधार मेरे पूज्य गुरुवर ही है। उनके विषय में कुछ न कहना कृतघ्नता होगी। मैं परम श्रद्धेय, चारित्र चूड़ामणि, तप-त्याग-संयम की मूर्ति गुरुदेव मुनि श्री मायाराम जी महाराज का कृतज्ञ भाव से वंन्दन-स्मरण करता हूँ कि जिनका अदृश्य आशीर्वाद सदा ही मेरा सम्बल बना है। प्रातः वंदनीय परम श्रद्धेय गुरुदेव योगिराज श्री रामजीलाल जी महाराज मेरे गुरुमह थे, अर्थात् दादा गुरु। बताना चाहूँगा कि मेरे जीवन का निर्माण उनकी अहैतुकी कृपा के कारण हो सका है। जब मैं अबोध और अयाना था, तब ये कथाएँ मैंने उन्हीं के श्री मुख से सुनी थी। सच तो यह है कि यह सब उन्हीं का है, मेरा नहीं।

परम आराध्य गुरुदेव, जैन-संघ के शास्ता आचार्य कल्प, शासन-सूर्य गुरुदेव मुनि श्री रामकृष्ण जी महाराज जिन्होंने मुझ अबोध को बोध, मूक को वाणी और लेखनी प्रदान की है। गुरुदेव श्री के प्रति मेरा रोम-रोम कृतज्ञ है, उनकी कृपा का आभारी है और रहेगा।

अन्त में अपने सहयोगी मुनियों और श्रद्धाशील श्रावकों के सहयोग का उल्लेख करना भी चाहूँगा। गुरुदेव श्री के ये सभी सन्त रत्न, श्री रमेश मुनि जी, श्री अरुण मुनि जी, श्री नरेन्द्र मुनि जी, श्री अमित मुनि जी और श्री विनीत मुनि जी श्री हरि मुनि जी मेरी सेवा-सहकार का सदा ध्यान रखते है। इसके साथ ही स्नेहाधार सम्बोधि (मासिक) के यशस्वी सम्पादक प्रिय डा० विनय 'विश्वास' जिसे प्यार से मैं 'बिनू कहता आया हूँ, उनकी श्रद्धा के मोती भी इस कृति में जुड़े हैं। हरिगन्धा मासिकी (हरियाणा सरकार) के पूर्व सम्पादक परमगुरुभक्त डा० सोमदत्त जी बंसल (चण्डीगढ़) तथा हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान श्री सत्य प्रकाश जी गोस्वामी, इन दोनों ने इस कृति के लिये अपने अमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये हैं। ये सभी मेरे आशीर्वाद के सुयोग्य पात्र हैं?

पाठक लाभ उठाएँ, इसी आशा शुभाशंसा के साथ–

सुभद्र मुनि

जैन स्थानक, पी. पी. ब्लाक,
पीतम पुरा, दिल्ली-३४